भुज्यमान आयुमें अपकर्षण और उत्कर्षण

कई विद्वानोंका ऐसा मत है कि भुज्यमान किसी भी आयुमें उत्कर्षणकरण नहीं होता, अपकर्षणकरण भी भुज्यमान तिर्यगायु और मनुष्यायुमें ही हो सकता है, कारण इन दोनोंकी उदीरणा संभव है। भुज्यमान देवायु और नरकायु अनपवर्त्य होनेके कारण उदीरणारहित है; इसलिये इनमें अपकर्षणकरण भी नहीं होता है। आयुकर्ममें यदि उत्कर्षण, अपकर्षणकरण हों तो वे वध्यमानमें ही होंगे।

वध्यमान आयुमें उत्कर्षण, अपकर्षणकरण होते हैं, इसमें किसीका विवाद नहीं, लेकिन अभीतक मेरा ख्याल है कि भुज्यमान सम्पूर्ण आयुओंमें भी उत्कर्षण, अपकर्षणकरण हो सकते हैं, इसका कारण यह है कि भुज्यमान तिर्यगायु और मनुष्यायुकी उदीरणा तो सर्वसम्मत है; भुज्यमान देवायु और नरकायुकी भी उदीरणा सिद्धान्तग्रन्थोंमें बतलाई है—

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्य-आऊणं ॥ गोम्मट० कर्म० गा० ४४१।

एक संक्रमणकरणको छोड़कर बाकीके बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्व, उदय, उपशान्त, निधत्ति और निकाचना ये नवकरण संपूर्ण आयुओंमें होते हैं।

किसी भी कर्मकी उदीरणा उसके उदयकालमें ही होती है; कारण उदीरणाका लक्षण निम्न प्रकार माना गया है :—

अण्णत्थठियस्सुदये संथुहणमुदीरणा हु अत्थि तं ॥ गो० कर्म० गा० ४३९।

सं० टी०—उदयावलिबाह्यस्थितस्थितिद्रव्यस्यापकर्षणवशादुदयावल्यां निक्षेपणमुदीरणा खलु।

उदयावलीके द्रव्यसे अधिक स्थितिवाले द्रव्यको अपकर्षणकरणके द्वारा उदयावलीमें डाल देना अर्थात् उदयावलीप्रमाण उस द्रव्यकी स्थिति कर देनेका नाम उदीरणा है। उदयगतकर्मके वर्तमान समयसे लेकर आवली पर्यन्त जितने समय हों उन सबके समूहको उदयावली कहा गया है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि कर्मकी उदीरणा उसके उदय हालतमें ही हो सकती है।

परभव-आउगस्स च उदीरणा णत्थि णियमेण ॥ —गो०कर्म० गा० १५९।

यह नियम स्पष्टरूपसे परभवकी (बध्यमान) आयुकी उदीरणाका निषेध कर रहा है।

उदयाणमावलिह्मि च उभयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं। लब्धिसार, गा० ६८।

अर्थात्—उदयावलीमें उदयगत प्रकृतियोंका ही क्षेपण होता है। उदयावलीके बाहिर उदयगत और अनुदयगत दोनों तरहकी प्रकृतियोंका क्षेपण होता है।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि जिस कर्मका उदय होता है उसीका उदयावली-बाह्यद्रव्य उदयावलीमें दिया जा सकता है। इसलिये देवायु और नरकायुकी उदीरणा क्रमसे देवगति और नरकगतिमें होगी, अन्यत्र नहीं, अर्थात् भुज्यमान देवायु और नरकायुकी ही उदीरणा हो सकती है, वध्यमान की नहीं।

शंका—परभव-आउगस्स च उदीरणा णत्थि णियमेव ॥ —गो० कर्म० गा० ९१८।

सं० टीका—परभवायुषो नियमेनोदीरणा नास्ति, उदयगतस्यैवोपपादिकचरमोत्तमदेहा-संख्येयवर्षायुर्भ्योऽन्यत्र तत्संभवात् ॥

अर्थात्—परभवकी (वध्यमान) आयुकी नियमसे उदीरणा नहीं होती, कारण कि देव, नारकी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमोत्तमदेहके धारक तथा असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य-तिर्यंचोंको छोड़कर बाकीके जीवोंके उदयगत आयुकी ही उदीरणा संभव है। इस कथनसे यह बात निकलती है कि देवायु और नरकायुकी उदीरणा ही नहीं होती है तथा पूर्वकथनसे यह सिद्ध होता है कि देवायु और नरकायुकी भी उदीरणा होती है; इसलिये शास्त्रोंमें ही पूर्वापर विरोध आता है ?

उत्तर—शास्त्रोंमें उदीरणा दो तरहकी बतलायी है—एक तो अन्य निमित्तसे मरण हो जानेको उदीरणा कहते हैं, दूसरी स्वतः आत्माकी क्रियाविशेषसे उदयावली बाह्यद्रव्यको उदयावलीमें डाल देनेको उदीरणा कहते हैं। ऐसी उदीरणा देवायु और नरकायुकी भी होती है, उदीरणामरण नहीं होता। आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी इस शंकाका निरास इस प्रकार करते हैं—"बहुरि उदीरणाशब्दका अर्थ जहाँ देवादिकके उदीरणा न कही तहाँ तो अन्य निमित्ततें मरण होय ताका नाम उदीरणा है। अर दश करणनिके कथनविषें उदीरणाकरण देवायुके भी कहा, तहाँ ऊपरके निषेकनिके द्रव्यको उदयावली विषें दीजिये, ताका नाम उदीरणा है —मोक्ष० प्रकाश, पुस्तकाकार, पृ०—४२१।

इस प्रकार शास्त्रके दोनों प्रकारके कथनोंको आपेक्षिक कथन स्वीकार करनेसे पूर्वापर-विरोधकी शंका नहीं रहती है।

कर्मोंकी उदीरणा अपकर्षणपूर्वक ही होती है। जबतक कर्मके द्रव्यको स्थितिका अपकर्षण नहीं होगा तबतक उस द्रव्यका उदयावलीमें प्रक्षेप नहीं हो सकता है, कारण कि उदयावलीमें प्रक्षेपका मतलब ही यह है कि जो कर्मद्रव्य अधिक समयमें उदय आने योग्य था वह अब उदयावलीमें ही उदय आकर नष्ट हो जायगा। इसी अभिप्रायसे कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकाकारने उदीरणाके लक्षणमें "अपकर्षणवशात्" यह पद दिया है।

इस कथनसे भुज्यमान देवायु और नरकायुमें अपकर्षणकरण होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

"हाणी ओक्कट्टणं णाम", "उक्कट्टणं हवे वड्ढी" ॥ गो० कर्म० गा० ४३८।
सं० टी०—स्थित्यनुभागयोर्हानिरपकर्षणम्, स्थित्यनुभागयोर्वृद्धिरुत्कर्षणम् ॥

कर्मोंकी स्थिति और अनुभागको घटा देना अपकर्षण है और बढ़ा देना उत्कर्षण है। शुभ प्रकृतियोंके स्थिति और अनुभागमें कमी संक्लेशपरिणामोंसे होती है और वृद्धि विशुद्ध परिणामोंसे होती है। अशुभ प्रकृतियोंकी स्थिति और अनुभागमें हानि विशुद्ध परिणामोंसे होती है और वृद्धि संक्लेशपरिणामोंसे होती है। देवायु शुभप्रकृति है, इसलिये उसके स्थिति और अनुभागमें कमी संक्लेशपरिणामोंसे होगी और वृद्धि विशुद्ध परिणामोंसे होगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब देवोंके संक्लेशता होनेसे देवायुका अपकर्षण हो सकता है तो विशुद्धता होनेसे देवायुका उत्कर्षण होना भी न्यायसंगत है। इसीप्रकार नरकायु अशुभ प्रकृति है, इसलिये उसके स्थिति और अनुभागमें कभी विशुद्ध परिणामोंसे होगी और वृद्धि संक्लेश परिणामोंसे होगी; इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब नारकियोंके विशुद्धता होनेसे नरकायुका अपकर्षण हो सकता है तो संक्लेशता होनेसे नरकायुका उत्कर्षण होना भी न्यायसंगत है। इस प्रकार भुज्यमान देवायु और नरकायुमें भी अपकर्षण और उत्कर्षण सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार भुज्यमान तिर्यंगायु और मनुष्यायुमें भी अपकर्षणकरणकी तरह उत्कर्षण करण स्वीकार करना चाहिये।

शंका—किसी भी कर्मप्रकृतिका उत्कर्षण उसकी बन्धव्युच्छित्तिके पहिले तक ही होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधुक्कट्टणकरणं सग-सग बंन्धोत्ति णियमेण ॥४४४॥कर्म०॥

इससे यह निष्कर्ष निकला कि आत्माकी जो अवस्था जिस कर्मप्रकृतिके बन्धमें कारण पड़ती है उसी अवस्थामें उस प्रकृतिका उत्कर्षण हो सकता है। वर्तमान भवमें उत्तर भवकी आयुका ही बन्ध होता है—वर्तमान (भुज्यमान) का नहीं। इसलिये भुज्यमान आयुका उत्कर्षण भी नहीं हो सकता है ?

उत्तर--बन्धव्युच्छित्तिके पहिले-पहिले ही उत्कर्षण होता है, यह कथन उत्कर्षणकी मर्यादाको बतलाता है अर्थात् जहाँतक जिस प्रकृतिका बंध हो सकता है वहींतक उस प्रकृतिका उत्कर्षण होगा, आगे नहीं। इसका यह आशय नहीं कि आत्माकी जो अवस्था कर्मप्रकृतिके बन्धमें कारण है उसी अवस्थामें उस प्रकृतिका उत्कर्षण हो सकता है, अन्यत्र नहीं। यदि ऐसा माना जाय, तो उत्कर्षणकरणको त्रयोदशगुणस्थान तक मानना असंगत ठहरेगा।

छच्च सजोगित्ति तदो ॥कर्म० गा० ४४२।

संयोगीपर्यन्त उत्कर्षण, अपकर्षण, उदय, उदीरणा, बन्ध और सत्व ये ६ करण होते हैं। लेकिन स्थिति-अनुभागकी वृद्धिको उत्कर्षणकरण माना गया है, यहाँ आत्माकी कोई भी अवस्था किसी भी कर्मके स्थिति-अनुभागबन्धमें कारण नहीं, तब ऐसी हालतमें उस कर्मके स्थिति और अनुभागका उत्कर्षण भी नहीं सकेगा। किन्तु जब उक्त वचनको उत्कर्षणकी मर्यादा बतलानेवाला मान लेते हैं तो कोई विरोध नहीं रहता, कारण कि त्रयोदशगुणस्थानमें सातावेदनीयका प्रकृति-प्रदेशबन्ध होता ही है। इसलिये उसीका उत्कर्षण भी त्रयोदशगुणस्थानतक होगा, अन्यका नहीं, ऐसा संगत अर्थ निकल आता है।

उक्त वचन मर्यादासूचक ही है। इसमें दूसरा प्रमाण यह है कि संक्रमणकरण को—

संकमणं करणं पुण सग-सग जादीण बंधोत्ति ॥ कर्म० ४४४॥

इस वचनके द्वारा अपनी-अपनी सजातीय प्रकृतिके बन्धपर्यन्त बतला करके भी—

णवरि विसेसं जाणे संकममवि होदि संतमोहम्मि ॥
मिच्छस्स यमिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ॥ कर्म० ४४३ ।

इस वचनके द्वारा मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृतिका संक्रमण ११वें गुणस्थान तक बतलाया है। इसलिये जिस प्रकार यह वचन संक्रमणके लिये यह नियम नहीं बना सकता कि आत्माकी जिस अवस्थामें जिस कर्मकी सजातीय प्रकृतियोंका बन्ध हो सकता है उसी अवस्थामें उस कर्मका संक्रमण होगा, दूसरी अवस्थामें नहीं, इसी प्रकार उक्त वचन उत्कर्षणके लिये भी ऐसा नियमसूचक नहीं है।

इस लेखका सारांश यह हुआ कि चारों भुज्यमान आयुओंकी उदीरणा हो सकती है और उदीरणा अपकर्षणपूर्वक ही होती है। इसलिये चारों भुज्यमान आयुओंमें अपकर्षण भी सिद्ध हो जाता है। शुभ प्रकृतियोंका अपकर्षण संक्लेश परिणामोंसे और अशुभका विशुद्ध परिणामोंसे होता है। जब चारों आयुओंके अपकर्षणके योग्य शुभ-अशुभकी अपेक्षा संक्लेश या विशुद्ध परिणाम चारों गतियोंमें पैदा हो सकते हैं तो उनके उत्कर्षणके योग्य उनसे विपरीत परिणाम भी चारों गतियोंमें पैदा हो सकते हैं। इसलिये चारों भुज्यमान आयुओंमें उत्कर्षण भी सिद्ध हो जाता है।

यह लेख मैंने अपनी शंकाको दूर करनेके लिये लिखा है। इसलिये विद्वानोंसे निवेदन है कि यदि उनको मेरे ये विचार विपरीत मालूम पड़ें, तो अपने विचार प्रमाणसहित अवश्य ही जैन दर्शनमें प्रकट करें, ताकि इस बातका निर्णय हो सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org